Study Material (1) MA Sem IV, Paper - EC-3 (C), Unit V

उद्योग

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। अतः यहाँ का उद्योग-व्यापार कृषि पर आश्रित है। मुगल-काल में यहाँ के कुटीर उद्योग-धंधे काफी विकसित थे। ढाका की मलमल विश्व-विख्यात थी। किन्तु, ब्रिटिश भारत में कुटीर उद्योग-धंधों का विनाश हो गया। कुछ संगठित उद्योग खड़े होने लगे जहाँ बृहत् पैमाने पर उत्पादन होने लगा। अतः आर्थिक असंतुलन उत्पन्न हो गया। 19वीं शताब्दी के अंत में कृषि पर आधारित कुछ उद्योग-धंधे खड़े किए गए, किन्तु आधारभूत उद्योग, जैसे—लौह, इस्पात और कोयला का विकास नहीं हो पाया। फलतः भारत में औद्योगिक क्रान्ति नहीं हो पाई। इस अध्याय में हम दो तरह के उद्योगों—संगठित और असंगठित की चर्चा करेंगे।

मध्ययुगीन हस्तशिल्प उद्योग गाँव या शहरों में स्थित थे। शहरी शिल्पी शहरी धनिकों या कुलीनों की आवश्यकता पूरी करते थे तथा अपनी वस्तुओं को विदेशों में भेजते थे।

Scanned with CamScanner

अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने से शहरी शिल्प उद्योग को सर्वाधिक नुकसान उठाना पड़ा। गाँवों के कुटीर उद्योग-धंधे भी मंद होने लगे। किन्तु इसी समय कुछ नई शक्तियाँ उठ उड़ी हुईं। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। राष्ट्रवादियों ने सरकार का विरोध बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन द्वारा शुरू किया। बहिष्कार के मूल में आर्थिक अवधारणा है। इसके दो अर्थ हैं—विदेशी वस्तुओं या अंग्रेजी मालों का बहिष्कार कर अंग्रेजों को आर्थिक नुकसान पहुँचाना तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग द्वारा स्वदेशी उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देना।

बहिष्कार का विचार कोई नया विचार न था। 1854 में ही भारतीय उद्योग-धंधों को पुनर्जीवित करने के लिए बहिष्कार-नीति के अवलंबन के बारे में कहा गया था। ज्ञातव्य है कि भारत में मैनचेस्टर में निर्मित सूती कपड़े का बहिष्कार करने के लिए कहा गया। इल्बर्ट विधेयक (Ilbert Bill) का विरोध भी ब्रिटिश मालों के बहिष्कार द्वारा किया गया। वस्तुतः 19वीं शताब्दी के अंतिम भाग में बहिष्कार या स्वदेशी वस्तुओं का आन्दोलन शुरू हो गया था। इसके मूल में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी स्वतुओं का प्रयोग था। बहिष्कार का अर्थ न केवल मैनचेस्टर के सूती वस्त्रों का बहिष्कार, बल्कि प्रत्येक अंग्रेजी वस्तु का बहिष्कार करना था। स्वदेशी का अर्थ प्रत्येक भारतीय वस्तु का इस्तेमाल करना था। राष्ट्रीय आन्दोलन का यह एक प्रमुख मुद्दा बन गया। 1891 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में पंजाब के लाला मुरलीधर ने प्रतिनिधियों पर विदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल के लिए व्यंग्य करते हुए कहा, "लगता है आप लोगों को अपने बिरादरों के हृदय के खून को पीकर मोटा होने में इन घृणित राक्षसों का साथ देने में संतोष मिलता है। ये झाड़-फानूस और लैंप, यूरोप की बनी कुर्सियाँ और मेजें, चुस्त कपड़े और हैट, अंग्रेजी कोट, औरतों की टोपियाँ और फ्राक, चाँदी की मूठ के बेंत और आपके घरों के सारे आरामदेह साजो-सामान भारत की मुसीबत के विजय-चिह्न, भारत की भुखमरी के स्मारक नहीं तो और क्या हैं? प्रत्येक रुपया जिसे आपने यूरोप की बनी वस्तुओं पर खर्च किया है, ऐसा रुपया है जिसे आपने अधिक निर्धन भाइयों से, ईमानदार दस्तकारों से, जो अब अपनी जीविका नहीं कमा सकते, छीना है।"[1] उन्होंने बतलाया कि विदेशी मालों की खपत ने भारतीय उद्योग-धंधों को नष्ट कर दिया और भारतीय उद्योग-धंधों के लिए संरक्षण की माँग की। उनका तर्क था, "निर्धन भारत और मोटे पूँजीवादी इंगलैंड के बीच व्यापार में बराबरी का व्यवहार क्या हो सकता है?" इसी तरह 1893 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पंडित मदनमोहन मालवीय ने बताया कि विदेशी वस्त्र भारत को बर्बाद कर रहे हैं। 1894 में कांग्रेस ने ब्रिटिश भारत में निर्मित सूती वस्त्र पर लगाए आबकारी शुल्क का विरोध किया और दृढ़ विश्वास जाहिर किया कि आबकारी शुल्क लगाकर भारत के हित की बलि लंकाशायर के हित के लिए दी जा रही है। 1901 में कांग्रेस के बंबई अधिवेशन में आर० पी० करंदीकर ने बताया कि किस प्रकार भारत के नवजात उद्योगों को नष्ट किया जा रहा है। उन्होंने कहा, "हमारे देश से कच्चे माल का निर्यात होता है और तैयार माल बनकर वापस आता है। यदि हम स्वतंत्र होते तो हम संरक्षण का सहारा लेते, जैसा सब देश नवजात उद्योगों की रक्षा के लिए करते हैं।" किन्तु, राष्ट्रवादियों की आवाज अनसुनी कर दी गई। भारत-सचिव लार्ड सैलिसबरी ने आदेश दिया, "भारतीय कारखानों में बने मालों से ब्रिटिश मालों की रक्षा के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।"

---

1. P. Sitaramayya, The History of the Indian Natioanl Congress, Vol. I, p. 41.

Scanned with CamScanner

ब्रिटिश सरकार की नीतियों के विरुद्ध स्वदेशी और राष्ट्रीय स्वाभिमान और आत्म-निर्भरता के लिए उन्हें आवश्यक समझा गया। स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप बंगाल के कुटीर उद्योग-धंधों में नई जान आ गई। यह केवल बंगाल तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि शीघ्र ही पूरे देश में फैल गया। 1919 से गांधी जी ने चर्खा से सूत कातने और खादी प्रयोग पर जोर देना शुरू किया। इससे भी ग्रामीण उद्योग-धंधों को बड़ा बल मिला।

1906-07 से वस्त्र-उद्योग का तीव्र गति से विकास शुरू हुआ। 1905-06 में हथकरघों से 1,033.2 मिलियर गज सूत काता जाता था। 1938-39 में यह बढ़कर 1,703·2 मिलियन गज हो गया। अखिल भारतीय बुनकर समुदाय (All India Spinners' Association) की स्थापना के पश्चात् खादी उत्पादन में और भी वृद्धि हो गई। इसे हम एक तालिका द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं—

वर्ष	मूल्य
1924–25	9·5 लाख रुपये
1930–31	72 लाख रुपये
1935	32 लाख रुपये
1941–42	1·2 लाख रुपये
1944–45	1·34 करोड़ रुपये

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में उपयोग किए जाने वाले वस्त्र में एक-तिहाई का उत्पादन हथकरघो द्वारा होता है। ग्रामीण बुनकर उद्योग के बने रहने के प्रमुखतः दो कारण हैं—(क) ग्रामीणों की माँग की प्रकृति तथा (ख) क्रेताओं की वित्तीय क्षमता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि वस्त्र उद्योग का एक गौरवपूर्ण इतिहास है। 1906 के स्वदेशी आंदोलन के पश्चात् इसमें नई जान आ गई। गांधीजी के समर्थन और सरकार के सहयोग के कारण बुनकरों की दशा में उत्तरोत्तर सुधार होता गया।

के० एस० वेंकटरमण का निष्कर्ष है कि 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में बुनकरों की दशा अत्यन्त ही दयनीय थी। यह उन्मुक्त व्यापार का काल था। गत साठ वर्षों में उनकी आर्थिक दशा में कोई सुधार नहीं हुआ।[1] 1904 के बाद ग्रामीण उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन दिया जाने लगा। फलतः बुनकरी, लुहारगीरी, बढ़ईगीरी आदि उद्योग-धंधे पनपने लगे। गाडगिल के शब्दों में, "19वीं शताब्दी में ग्रामीण उद्योग-धंधों का विनाश होने लगा। अनेक लोग बेकार हो गए और मजदूर बन गए। कुछ लोग शहरों के उद्योग-धंधों में शामिल कर लिये गए। कुछ लोग अपने पैतृक पेशाओं में लगे रहे। वे अत्यन्त निर्धन थे तथा उन्हें प्रतिकूल

1. Venkataraman, K. S., The Handlum Industry in South India, p. 190.

मौसमों का सामना करना पड़ता था।"[1] 150 वर्षों के ब्रिटिश शासन के बावजूद भी 80 प्रतिशत भारतीय निर्धन बने रहे।

संगठित उद्योगों की दशा उन्नत थी। इनमें बागवानी और कल-कारखाने थे। बागवानी में नील, चाय, कॉफी, रबर आदि थे। इन वाणिज्य-फसलों से काफी मुनाफा होता था। अतः सरकार इनके उत्पादन पर विशेष ध्यान देती थी। कल-कारखानों में वस्त्र उद्योग, कोयला, लौह-इस्पात, अभियंत्रणा और रासायनिक थे। इन उद्योगों की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनका प्रबंधन यूरोपीयों द्वारा होता था तथा उन पर उनकी ही पूँजी लगी हुई थी। इनमें से कुछ उद्योग संयुक्त पूंजी कम्पनी (Joint Stock Company) के रूप में थे। इनके अधिकतर एजेन्ट यूरोपीय थे। 1931-32 में ब्रिटेन में ऐसी 911 कम्पनियाँ पंजीकृत थीं और इन पर 756 मिलियन पौंड की पूँजी लगी हुई थी। भारत में 7,998 कम्पनियाँ पंजीकृत थीं जिन पर 286 करोड़ की पूँजी लगी हुई थी।

निस्सन्देह संगठित उद्योगों से अधिक लाभ यूरोपीयों को पहुँचता था। वे भारत में जो कुछ कमाते, स्वदेश भेज देते थे। अतः भारतीयों को कोई लाभ नहीं हो पाता था। उद्योगों के प्रबंधन और पूंजी में उनका कोई हाथ नहीं रहता था। सरकार की कृपा यूरोपीयों पर रहती थी जिन्हें अनेक रियायतें दी जाती थीं। यह अंग्रेज उद्योगपतियों और बागवान-मालिकों को प्रोत्साहन देती थी। दूसरी ओर यह भारतीय स्वामित्व वाले वस्त्र उद्योग को कोई प्रोत्साहन नहीं देती थी। 1923 तक इसके प्रति इसका दृष्टिकोण बड़ा ही शत्रुता-पूर्ण था।

19वीं शताब्दी में पश्चिमी स्वतंत्र देशों का तीव्र औद्योगीकरण हो रहा था। इंग्लैंड की तरह वहाँ भी औद्योगिक क्रांति आ रही थी। संयुक्त राज्य अमरीका और स्विट्जरलैंड उद्योग-प्रधान देशों का नेतृत्व कर रहे थे। आजादी हासिल करते ही उन्होंने अपने उद्योगों को संरक्षण देना शुरू कर दिया। आयात की जाने वाली वस्तुओं पर भारी सीमा-शुल्क लगाया गया। एक ही शताब्दी में अमरीका औद्योगिक मामलों में ब्रिटेन से आगे बढ़ गया। बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस और स्वीडन में भी औद्योगिक क्रांति आई। इन सभी देशों में औद्योगीकरण को संरक्षण व विदेशी सहायता से प्रोत्साहन दिया गया। फलतः 1860 तक वे स्वावलंबी हो गए तथा ब्रिटेन के आयात पर आश्रित न रहे। इटली, हालैंड, डेनमार्क, कनाडा, जापान आदि देशों में भी औद्योगिक क्रांति आई। यह उल्लेखनीय है कि हालैंड, डेनमार्क, स्विटजरलैंड में खनिज पदार्थों के अभाव में भी औद्योगिक क्रांति आई।

20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत के उद्योग-धंधे पिछड़े रहे, अर्थव्यवस्था अवरुद्ध

---

1. "The village industry was a decaying industry. Large members of those thrown out took to ordinary labour, while a fortunate few were absorbed in industry in the towns, some also took to agricuture. while for the rest, i.e., those who still retained their hereditary occupations, they remained, where they always were, a poverty stricken class, abnormally sensitive to the variations of the seasons."—Gadgil, D. B., The Industrial Evolution of India, p. 172.

Scanned with CamScanner

रही और सामाजिक समस्याएँ जटिल हो गईं।[1] यह ठीक है कि जूट, लोहा, वस्त्र आदि उद्योग-धंधों का शिलान्यास कर दिया गया था, किन्तु उनका विकास अवरुद्ध था। अतः लोगों की निर्धनता बनी रही। देश कृषिप्रधान ही बना रहा। जो कुछ भी औद्योगिक प्रगति हुई, वह भारतीय की अपेक्षा ब्रिटिशीय अधिक थी। यह एक विचित्र बात थी। ब्रिटिश पूँजी, उद्यम, व्यवस्थापन एवं तकनीकी कुशलता ने भारतीय श्रम और कच्चे मालों का खुलकर शोषण-दोहन किया। यहाँ का धन विलायत भेजा जाने लगा।

ब्रिटिश सरकार ने संगठित उद्योगों में सर्वप्रथम बागवानी पर ध्यान दिया। नील, चाय, काफी, रबर आदि का उत्पादन किया जाने लगा। 1850 से 1900 तक नील को छोड़कर अन्य वाणिज्य-फसलों का उत्पादन संतोषजनक था। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक 525,000 एकड़ में चाय तथा 100,000 एकड़ में कॉफी की खेती होने लगी। 1949-50 तक 800,000 एकड़ में चाय की खेती होने लगी। चाय का उत्पादन 600 मिलियन पौंड था। इस बीच 525,000 एकड़ भूमि में 50 मिलियन पौंड कॉफी उपजाई जाने लगी।

लोहा और इस्पात उद्योग

भारत में खनिज लोहे को पिघलाने की कला प्राचीन काल से प्रचलित है। प्रो० विलसन के शब्दों में, "हिन्दुओं को लोह पिघलाने, जोड़ने तथा उससे इस्पात बनाने की कला प्राचीन काल से ही ज्ञात थी।"[2] मेहरौली-स्थित लौह स्तम्भ इसका ज्वलंत उदाहरण है जो सदियों की धूप-वर्षा से आज भी जंगमुक्त है। वी० बाल के अनुसार, "इस्पात एवं खनिज लोहे का निर्माण कम-से-कम 2000 वर्ष पूर्व अपनी ऊँचाई तक पहुँच गया था।"[3]

1830 में भारत में प्रथम लोहा-इस्पात निर्माण कार्य भारतीय इस्पात एवं लौह कम्पनी द्वारा पोर्टी नोवो में शुरू हुआ। यह कम्पनी सलेम खनिज (Salem ores) का उपयोग करती थी। बाद में यह कम्पनी भारतीय लोहा कम्पनी के साथ शामिल कर दी गयी। उसके लिए अतिरिक्त मशीनरी त्रिचुन्नामलाई (उत्तरी आर्कोट), वैयपोर (मालाबार) के पल्लमपट्टी (सलेम) में लगाई गई। अनेक कारणों विशेषकर वित्तीय कारण से 1867 में ये समस्त इकाइयाँ बन्द कर दी गईं। फर्कुहर एण्ड मांट (1768-75), जेसोफ एण्ड कम्पनी (1839), मकाय एण्ड कं० (1855-75) एवं कुमाऊ वर्क्स (1857-1865) आदि प्रारम्भिक उपक्रमों का ऐसा ही इतिहास था। इन समस्त उपकरणों में चारकोल ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता था।

सर्वप्रथम 1874 में भारतीय कोयला से कोक (Coke) बनाकर उसे दो उपकरणों में उपयोग किया गया। ये उपकरण कुल्टी और रानीगंज कोयला-क्षेत्र में स्थित थे। इनकी

---

1. "A general survey of the industrial development of the first half of the 20th century clearly indicates the backwardness of India, the stagnation of its social problems."—Tarachand, History of the Freedom Movement, Vol III, p. 77.

2. "The Hindus have the art of smelting. of welding it and of making steel and have these arts from time immemorial."—Wilson.

3. "The manufacture of steel and wrought iron had reached a high perfection at least two thousands years ago."—V. Ball.

Scanned with CamScanner

उत्पादन-क्षमता 20 टन प्रतिदिन थी। यह प्रयास बंगाल लोहा कम्पनी द्वारा किया गया था। यह कम्पनी चार वर्ष बाद बन्द कर दी गई और 1881 में सरकार ने इसके संयंत्र (Plant) को ले लिया। बाद में इसे एक नवीन बंगाल लोहा एवं इस्पात कम्पनी को बेच दिया गया। 1900 में लोहा का उत्पादन 35,000 टन था। 1906,07 में इसका वार्षिक उत्पादन 40,000 टन था। ब्रिटेन से लगभग 800,000 टन लोहे का आयात किया जाता था।

भारत में इस्पात के उत्पादन का श्रेय जमशेदजी टाटा के प्रयासों, भावनाओं, उपक्रम एवं दूरदर्शिता को प्राप्त है। इस्पात कारखाने की स्थापना में आवश्यक कच्चा माल, खनिज लोहा, जलापूर्ति, मजदूर-स्थल के चुनाव आदि की अनेक समस्याएँ थीं। साथ ही आवश्यक पूँजी का भी प्रश्न था। सौभाग्यवश यह जनता द्वारा प्रदान की गई। एक्सेल सहलिन (Axel Sahlin) के शब्दों में, "सुबह से रात तक बम्बई में टाटा के कार्यालय में विनियोक्ताओं की भीड़ लगी रहती थी जिसमें वृद्ध-जवान, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष सभी-के-सभी थे। तीन सप्ताह के अंत में निर्माण-कार्य के लिए 2,20,00,000 रुपये प्राप्त हो गए जो आठ हजार भारतीयों द्वारा पैसा-पैसा करके अंशदान के रूप में प्रदान किया गया था।"

भारत में इस्पात उत्पादन का श्रेय जमशेदजी टाटा के प्रयासों, भावनाओं, उपक्रम एवं दूरदर्शिता को प्राप्त है। उन्होंने अमरीकी एवं यूरोपीय विशेषज्ञों की सहायता से बंगाल और बिहार का सर्वेक्षण करके बड़े पैमाने पर लोहा-इस्पात कारखाना स्थापित करने का निश्चय किया। वे मध्यप्रदेश के वारोरा (Warora) में कारखाना स्थापित करना चाहते थे, किन्तु सरकार ने अनुमति नहीं दी। अतः उन्होंने तत्कालीन भारत सचिव जॉर्ज हैमिल्टन (George Hamilton) से उत्साहित किए जाने पर अपनी योजना को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया। उसका स्वप्न 1907 में साकार हुआ जब बिहार में सांची में टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी की स्थापना की गई जिसका नाम बाद में जमशेदपुर हो गया। यह कम्पनी लगभग 232 लाख रुपये की पूँजी से शुरू की गई। 1911 में सर्वप्रथम कच्चा लोहा (pig iron) व 1913 में इस्पात का उत्पादन किया गया। 1913-14 में प्रथम विश्वयुद्ध ने उद्योग को प्रोत्साहित किया और 1916-17 में यह उद्योग अपनी पूर्ण क्षमता तक उत्पादन करने के योग्य हो गया। यह 147,497 टन खनिज लोहा और 98,726 टन इस्पात का उत्पादन करने लगा। 1921-22 में खनिज लोहे का उत्पादन 2,70,470 टन व इस्पात का उत्पादन 1,82,107 टन हो गया। युद्धकाल में टाटा कम्पनी ने सरकार को रेल, इस्पात आदि के रूप में लगभग 3,00,000 टन इस्पात की पूर्ति की जो मेसोपोटामिया, मिस्र और अफ्रीका के युद्ध-स्थलों को भेजा गया था।

प्रथम विश्वयुद्ध के शीघ्र बाद देश में दो नवीन लोहा कारखाने स्थापित किए गए। 1918 में हीरापुर में भारतीय लोहा एवं इस्पात कम्पनी स्थापित हुई जिसकी खनिज लोहे की क्षमता 3,60,000 टन थी। इसका अधिकांश भाग निर्यात कर दिया जाता था। 1923 में मैसूर सरकार ने भद्रावती में एक संयंत्र लगाकर उसमें ईंधन के रूप में चारकोल का प्रयोग किया जिसकी क्षमता प्रतिवर्ष 86,000 टन खनिज लोहा थी।

युद्ध के बाद इस्पात के मूल्यों में भारी कमी आई। टाटा इस्पात रेलों का मूल्य 1924 में 141 रुपये प्रति टन से घटकर 1925 में 107 रुपये हो गया। देश के लौह संयंत्र देश की लौह आवश्यकता-पूर्ति में असमर्थ थे। अतः विदेशों से लोहे का आयात किया जाने लगा। अग्र-लिखित तालिका लोहे के आयात को स्पष्ट करती है—

Scanned with CamScanner

		टन
1914-18 प्रतिवर्ष	—	422,000
अन्तःयुद्धकालीन वर्ष	—	661,000
1929-30 प्रतिवर्ष	—	968,000

1924 में सरकार ने इस्पात उद्योग (संरक्षण) अधिनियम पारित करके कुछ विशेष प्रकार के माल पर आयात-कर लगा दिया तथा कुछ चरेलू इस्पात व उत्पादन पर सहायता प्रदान की गई। सर्वप्रथम तीन वर्षों के लिए संरक्षण प्रदान किया गया। 1923 में प्रशुल्क परिषद् (Tariff Board) की जाँच होने के पश्चात् 1926 व 1933 में दो वैधानिक जाँच की गई तथा 1924, 1925 व 1930 में तीन पूरक जाँच एवं 1947 में एक अन्तिम संक्षिप्त जाँच की गई। अन्तिम जाँच (1947) में संरक्षण को कायम रखने पर कोई बल नहीं दिया गया। उद्योग ने 23 वर्षों तक संरक्षण का लाभ उठाया।

1929-30 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के समय टाटा कम्पनी बन्द होने की स्थिति में आ गई। 1924 में विस्तार-योजना पूर्ण हो गई। नवीन संयंत्र को काम में लाया गया और उससे इस्पात का उत्पादन बढ़कर 4,36,000 टन हो गया।

1936 में मैसूर राज्य में सरकार ने भद्रावती वर्क्स विद्युत उपकरण की स्थापना की। इसके साथ ही भारत में एक दूसरा इस्पात संयंत्र कायम किया गया। इसकी वार्षिक उत्पादन-क्षमता 30,000 टन थी। 1939 में एक तीसरा इस्पात संयंत्र बर्नपुर में खोला गया। 1942 तक बर्नपुर संयंत्र 2,40,000 टन कच्चा इस्पात तैयार करने लगा। अतः द्वितीय विश्वयुद्ध के छिड़ने तक भारत में इस्पात का कुल उत्पादन एक मिलियन टन कच्चा इस्पात से अधिक था 4,80,000 टन निर्मित इस्पात था। युद्धकाल में समस्त इस्पात संयंत्रों में अधिक कार्य के कारण 1943 में उत्पादन सर्वोत्तम सीमा 1,151,000 टन तक पहुँच गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध-काल में कुल उत्पादन में वृद्धि होने के अतिरिक्त भारत में पहली बार नवीन वस्तुओं के उत्पादन एवं नवीन प्रकार के इस्पात का निर्माण किया गया। जमशेदपुर में रेलवे पहिए, टायर एवं एक्सल व धातु के विशेष इस्पात उपकरणों का उत्पादन किया गया। अपनी पूर्ण क्षमता तक काम करने से टाटा कारखाने ने अनेक प्रकार की इस्पात का निर्माण करके विश्व में एक रिकार्ड स्थापित किया। भारत मध्यपूर्व की समस्त युद्ध-माँग की पूर्ति करने लगा। टाटा में विशेष बुलेट-प्रूफ प्लेट, निकिल क्रोम इस्पात, मशीनगन, राइफल्स, मैगजीन एवं बन्दूक के कारतूस, विशेष इस्पात शीट, हवाई बम्ब के लिये निकिल क्रोम-मोलीबडेनम, इस्पात छड़ें एवं अन्य विशेष इस्पात-सुरक्षा कार्यों हेतु आदि वस्तुओं की पूर्ति की गई।

युद्ध के अंत तक इस्पात उद्योग को दो मुख्य कार्य करने शेष थे। ये कार्य संयंत्र एवं मशीनरी के पुनर्संस्थापन, नवीनीकरण तथा विस्तार से सम्बन्धित थे। युद्ध में निरन्तर माँग के कारण इस्पात के उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

1947 में भारत के विभाजन के समय इस्पात उद्योग में चार इकाइयाँ सम्मिलित थीं—टाटा आयरन ऐन्ड स्टील कम्पनी, इण्डियन आयरन ऐन्ड स्टील कम्पनी, स्टील कारपोरेशन ऑफ इण्डिया एवं भद्रावती प्लाण्ट। अन्तिम कारखाना सरकारी संयंत्र था तथा अन्य शेष निजी क्षेत्र में थे। इन चारों संयंत्रों की कुल क्षमता 1·2 मिलियन टन थी। परन्तु प्रतिस्थापन एवं आधुनिकीकरण में पिछड़े रहने के कारण 1949 में उत्पादन 9·76 लाख टन ही हो सका।

Scanned with CamScanner

सूती वस्त्र उद्योग

भारत में सर्वप्रथम 1818 में हावड़ा जिले में पहला मिल फोर्ट ग्लोस्टर मिल (Fort Gloster Mill) के नाम से खोली गई। यह स्थानीय उत्पन्न कपास की कताई करती थी। 1851 में बम्बई में वस्त्र मिल बम्बई कताई एवं बुनाई कम्पनी लिमिटेड के नाम से कावसजी नानावोय द्वारा प्रारम्भ की गई। उस वर्ष व्यापारियों ने एक कम्पनी का निर्माण करके जनता से चन्दा एकत्रित किया और एक वस्त्र मिल की स्थापना की। 1854 से यह मिल उत्पादन कार्य करने लगी। 1857 में बम्बई थ्रोस्टिल मिल (Bombay Throtle) के नाम से शुरू की गई। इस प्रारम्भिक सफलता ने देश के अनेक अमीर व्यापारियों को वस्त्र उद्योग प्रारंभ करने को प्रोत्साहित किया। फलत: 1851 से 1915 के बीच 73 फर्मों ने 96 उद्योग बम्बई में प्रारंभ किए। इनमें 30 लाख तकुए, 51,900 करघे, 1,12,000 श्रमिक एवं 7 66 करोड़ रुपये की पूँजी लगी थी। 1882 और 1899 तक बम्बई में 39 कताई मिलें खुलीं। 1860 से 1868 तक देश के 17 वस्त्र उद्योगों में अकेले बम्बई में 11 मिलें खुलीं। 1876 तक देश में 47 मिलें स्थापित की गईं। 1875-1890 तक वस्त्र उद्योग की स्थिति अच्छी रही। इस बीच उद्योगों का विस्तार भी हुआ। 1858 तक देश में 58 मिलें कायम हो गईं। इनमें 14·71 लाख तकुए और 1,300 करघे लगे थे।

वस्त्र उद्योग देश के अन्य भागों में भी खुलने लगा। एक सेवानिवृत्त सरकारी व्यक्ति रंचो दलाल छोटेलाल ने 1859 में अहमदाबाद में प्रथम मिल की स्थापना की। 1880-1900 के बीच अहमदाबाद में 26 मिलें खुलीं। 1900 तक वहाँ कुल मिलाकर 29 मिलें कार्य कर रही थीं जिनमें 4,58,000 तकुए, 8,700 करघे तथा 10,000 मजदूर लगे थे।

एक ओर तो भारतीय व्यापारी वस्त्र मिलों को बम्बई और अहमदाबाद में विकसित कर रहे थे, दूसरी ओर ब्रिटिश व्यापारी भी पीछे नहीं थे। 1861 और 1923 के बीच मैसर्स बैग सदरलैंड एण्ड कं० ने कानपुर में छह बड़ी मिलों की स्थापना की। 1877 के बाद वस्त्र उद्योग शोलापुर और नागपुर में भी खोले गए।

19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में वस्त्र उद्योग को भीषण हड़ताल के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मुद्रा एवं विनिमय की कठिनाइयों तथा बम्बई में हैजा फैलने से 1897 में दीर्घकाल तक उद्योग बन्द रहे। विनिमय की कठिनाइयों से, सिक्कों की ढलाई बन्द होने से तथा चीन और जापान के साथ व्यापार कम होने से सूती उद्योगों को बड़ा नुकसान उठाना पड़ा। इन कठिनाइयों के बावजूद भी नवीन सूती उद्योग कायम होते रहे। 1900 तक भारत में 193 मिलें कायम हो गईं। इनमें 49,54,783 तकुए तथा 40,124 करघे लगे हुए थे। वस्त्र उद्योगों में बुनाई को विकसित किया गया।

वस्त्र उद्योग मुख्यतः बम्बई और अहमदाबाद में स्थापित किए गए। इसके कई कारण थे। प्रथम, बम्बई महाप्रांत, गुजरात, कच्छ, बरार और मध्य प्रांत में कपास का काफी उत्पादन होता था। अतः बम्बई और अहमदाबाद की मिलों को कच्चा माल सुगमतापूर्वक मिल जाता था। सस्ते मजदूर भी उपलब्ध थे। बम्बई के व्यापारी—पारसी, भाटिया, बोहरा आदि विदेशी व्यापार से काफी सम्पन्न बन गए थे। वे वस्त्र उद्योग में अपनी पूंजी का निवेश करने लगे। इस उद्योग के बाजार भी विस्तृत थे। चीन में भारतीय वस्त्रों और धागों की बड़ी माँग थी। उदाहरणस्वरूप 1904 से 1908 तक 248 मिलियन पौंड धागे का निर्यात किया गया जिसमें केवल चीन को 220·7 मिलियन पौंड धागे का निर्यात किया गया।

Scanned with CamScanner

स्वदेशी आन्दोलन (1906) ने सूती वस्त्र उद्योग को काफी प्रोत्साहित किया। 1910 तक मिलों की संख्या बढ़कर 263 हो गई जिसमें 6·2 मिलियन तकुए और 83 हजार करघे थे। कपास का उपयोग बढ़कर 19 मिलियन गाँठ तथा श्रमिकों की संख्या बढ़कर 234 हजार होगई।

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-1918) ने वस्त्र उद्योग को प्रोत्साहित किया। मिलों ने काफी मुनाफा कमाया तथा मिलों के अंशों (Shares) के मूल्यों में बहुत अधिक वृद्धि हुई। युद्धकाल में मशीनों के महत्वपूर्ण भागों का आयात करना संभव नहीं था, अतः नवीन मिलों की स्थापना करने का कोई प्रश्न नहीं था। लेकिन युद्ध की तेजी अगले पाँच वर्षों तक बनी रही। इस अवधि में मिलों की संख्या में वृद्धि हुई। तकुए 6·76 मिलियन से बढ़कर 8·51 मिलियन एवं करघे 1,19,121 से बढ़कर 1,54,292 हो गए।

1929-30 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का वस्त्र उद्योग पर भी कुप्रभाव पड़ा। 1915 से 1925 तक बुनाई विभाग के विस्तार के बावजूद भी अनेक इकाइयाँ असंतुलित रहीं। फलतः मंदी काल में अनेक मिलें वित्तीय एवं भौतिक ढंग से इतनी कमजोर हो गईं कि वे परिस्थितियों का सामना न कर सकीं। 1938 तक मन्दी के प्रभाव दृष्टिगोचर होते रहे। वस्त्र उद्योग बम्बई मिल-मालिक संघ (Bombay Mill Owners Association) के नेतृत्व में पारस्परिक सहयोग द्वारा उत्पादन को कम करने की योजना बनाने लगा।

इसी बीच 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया। 1926 में मिलों की संख्या 334 थी जो बढ़कर 1939 में 389 हो गई। तकुओं की संख्या 8·7 मिलियन से बढ़कर 10·1 मिलियन व करघों की संख्या 159 हजार से बढ़कर 200 हो गई। मजदूरों की संख्या 3·74 लाख से बढ़कर 4·30 लाख एवं कपास की खपत 2·1 मिलियन गाँठों से बढ़कर 3·7 मिलियन गाँठें हो गईं। फलतः कपड़े के उत्पादन में 93% की वृद्धि हुई। नवीन मिलों ने उच्चकोटि का सूत एवं कपड़े का उत्पादन शुरू कर दिया।

द्वितीय युद्धकाल में उद्योग को कच्ची सामग्री एवं मशीन सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किन्तु, सरकारी संरक्षण से उद्योग ने तीव्र प्रगति की। 1945 तक मिलों की संख्या बढ़कर 417 हो गई। मजदूरों की संख्या 5·10 लाख हो गई। 1939 की तुलना में कपास की खपत 4·9 मिलियन गाँठ बढ़ गई। कपड़े का उत्पादन 1939-40 में 4,012 मिलियन गज से बढ़कर 1944-45 में 4·726 मिलियन गज और सूत का 1,235 मिलियन पौंड से बढ़कर 1,652 मिलियन पौंड हो गया। परन्तु आयात की कठिनाइयों के कारण वस्त्रों का आयात 560 मिलियन गज से घटकर 50 मिलियन गज हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने सूती उद्योग में नवीन समस्याओं को जन्म दिया। इसके साथ ही साथ आयात की समाप्ति से देश के अन्दर और बाहर एवं मित्र राज्यों की ओर से भारतीय माल की सैनिक माँग बढ़ी। फलतः वस्त्र की कमी हो गई और मूल्य बढ़ गए। भारत सरकार ने अनेक योजनाएँ प्रारंभ कीं। इनमें प्रमाण वस्त्र उद्योग योजना (1942), कपास वस्त्र एवं सूत नियन्त्रण आदेश (1943 एवं 1945 में संशोधन) प्रमुख थे। इनके द्वारा उत्पादन, वितरण तथा कपास के मूल्य को नियंत्रित करने का प्रयास किया गया। इनके अतिरिक्त 1943 में वस्त्र नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई। इसका प्रमुख उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना था। 1942 में उपयोगिता वस्त्र योजना शुरू की गई। परिवहन में मितव्ययिता लाने एवं अनावश्यक आवागमन रोकने के उद्देश्य से कपास वस्त्र (आवागमन पर नियंत्रण) आदेश (1946) पारित

Scanned with CamScanner

किया गया। कच्चा मालों के मूल्य का नियंत्रण करने हेतु सूती वस्त्र (कच्चा माल और भंडारण) आदेश (1946) पारित किया गया। 1948 में उपयुक्त प्रकार के वस्त्र उत्पादन को अधिकतम करने हेतु लक्ष्यों को सुझाव देने सम्बन्धी सूती वस्त्र (नियंत्रण) आदेश पारित किया गया। फिर भी ये समस्त योजनाएँ अंशतः ही सफल सिद्ध हो सकीं।

भारतीय वस्त्र उद्योग को समय-समय पर संरक्षण भी प्रदान किया गया है। 1926 में संरक्षण पर ध्यान देने हेतु एवं उद्योग की स्थिति का अध्ययन करने हेतु एक प्रशुल्क बोर्ड की स्थापना की गई। इसने 1927 में अपनी रिपोर्ट दी। इसकी सिफारिशों के अनुसार सूत के आयात पर 50% कर लगाया गया। इसके पश्चात् मशीनरी एवं मिल स्टोर पर कर को समाप्त कर दिया गया। 1927 में लगाए गए आयात कर से स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। 1928-1929 में हड़ताल व तालाबंदी होने के कारण उद्योग की स्थिति और भी खराब हो गई। इस अवधि में वस्त्र उद्योग को जापानी प्रतियोगिता का भी सामना करना पड़ा। अतः संरक्षण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। सरकार ने जी० एस० हार्डी को नियुक्त किया जिन्हें सर्वेक्षण कर अपनी रिपोर्ट देने के लिए कहा गया। उनकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप 1930 में सूती वस्त्र उद्योग (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थे—

1. 15% प्रति पौंड ब्रिटेन से आयात होने वाले सादे धागे पर आयात कर लगाया गया।

2. अन्य वस्त्र जो ब्रिटेन से आयात होता था, उस पर 15% आयात कर लगाया गया।

3. अन्य देशों के वस्त्र के आयात पर 20% कर लगाया गया।

4. अन्य देशों से अन्य प्रकार के कपड़े के आयात पर 20% लगाया गया।

1930-31 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने वस्त्र उद्योग के विकास को प्रोत्साहित किया। मार्च, 1931 में सरकार ने ब्रिटिश कपड़े पर आयात कर बढ़ाकर 20% तथा गैर-ब्रिटिश कपड़े पर 25% कर दिया। उसी वर्ष अक्टूबर में आयात करों पर 25% का अधिभार लगाया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त नियुक्त किए गए नवीन प्रशुल्क बोर्ड ने उद्योग के संरक्षण के दावे को पुनः जाँचा। 1945 में इस बोर्ड ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसने बतलाया कि युद्धकाल में उद्योग की वित्तीय स्थिति में काफी सुधार हुआ है। अतः इसने संरक्षण को हटाने तथा आयात कर को जारी रखने की सिफारिश की। धागे पर आयात कर वापस लेने की सिफारिश की गई। 1947 में वस्त्र उद्योग से संरक्षण इस आधार पर हटा लिया गया कि आवश्यकता पड़ने पर इसे पुनः लगा दिया जाएगा।

1947 में देश-विभाजन ने वस्त्र उद्योग को बड़ा प्रभावित किया। सिंध और पश्चिम पंजाब का उपजाऊ-व सिंचित क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया। अविभाजित भारत में 1946-47 में कपास उत्पादन के कुल 14,901,000 एकड़ भूमि में से 11,671,000 एकड़ भारत में रही। इस प्रकार 22% भूमि पाकिस्तान में थी। अविभाजित भारत में 1946-47 में 43 लाख गाँठों का कुल उत्पादन हुआ था जिसमें भारत का भाग 26·5 लाख गाँठें था। 423 मिलों में से 408 मिलें भारत में रह गईं। भारतीय मिलों में कपास की खपत 38·6 लाख गाँठें थीं और

Scanned with CamScanner

इस कारण भारत को आयात पर निर्भर रहना पड़ा। पाकिस्तान से इसे 9·8 लाख टन कपास आयात करना पड़ा। इस प्रकार, वस्त्र उद्योग प्रधानतः एक भारतीय उद्योग था। प्रारम्भिक काल में इसका व्यवस्थापन यूरोपीयों के हाथ में था। 1948 में इस उद्योग की कुल पूंजी में 21 प्रतिशत विदेशी पूंजी थी।[1]